दैनिक भास्कर

Date: 02-01-26

भारत में होने जा रही एआई समिट के क्या मायने हैं

संपादकीय

एआई इम्पैक्ट पर शिखर वार्ता के चौथे चरण की मेजबानी भारत 15-20 फरवरी के बीच करेगा। इसमें भाग लेने के लिए चीन को भी निमंत्रण भेजा गया है। पहले के तीन चरण यूके, दक्षिण कोरिया और फ्रांस में हु थे। भारत की मेजबानी का मतलब है कि यह बैठक ग्लोबल साउथ में पहली बार आयोजित होगी। इन बैठकों का उद्देश्य दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में एआई के खतरों और प्रभावों को लेकर संस्थाओं और नियमों का निर्माण करना और उन पर वैश्विक सर्वसम्मति बनाना है। इस बीच एआई टेक्नोलोजी के प्रणेताओं में से एक सैम आल्टमैन ने एक बार फिर अपने बयानों से चौंकाया है। एआई के भावी खतरे का ब्योरा देते हुए उन्होंने कहा कि इस टेक्नोलोजी से सिक्योरिटी के अलावा मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक निर्भरता और बेरोजगारी का संकट बढ़ सकता है। आल्टमैन अपनी कंपनी के लिए एक पद का सृजन कर रहे हैं, जिसे हेड ऑफ प्रिपेयर्डनेस कहा जाएगा। यह एआई के दुष्परिणामों से बचने का खाका तैयार करेगा। एआई के इस्तेमाल के लिए भारत सहित दुनिया का हर देश अपने को तैयार तो कर रहा है लेकिन श्रमिक - बाहुल्य वाले विकासशील देशों में ऐसी तकनीकी को लाने से पहले बारीकी से परखना होगा। एआई से उत्पादन और डिलीवरी लागतें घटेंगी, लेकिन अगर इससे बेरोजगारी बढ़ती है तो उसकी सामाजिक कीमत चुकानी पड़ेगी।

Date: 02-01-26

2026 के इस नए साल में हमारा भारत कैसा हो?

राजदीप सरदेसाई

'जहां मन भय से मुक्त हो और मस्तक ऊंचा हो; जहां ज्ञान स्वतंत्र हो; जहां दुनिया संकीर्ण दीवारों से टूटकर टुकड़ों में न बंटी हो... स्वतंत्रता के उस स्वर्ग में, मेरे देश को जाग्रत होने दो।' (रबींद्रनाथ ठाकुर) ये पंक्तियां लिखे जाने के एक सदी से भी अधिक समय बाद भारत के विचार को नई दृष्टि से देखने का समय आ गया है। लिहाजा, इनसे प्रेरित होकर 2026 के भारत के लिए एक प्रार्थना प्रस्तुत है।

एक ऐसा भारत, जो वर्तमान और भविष्य को रियर-व्यू मिरर से देखकर न तय करे। जहां हमारे सांसद इस पर बहस में घंटों न बिताएं कि 1930 के दशक में वंदे मातरम् से किसने कौन-सा अंतरा हटाया था या 1950 के दशक में नेहरू ने क्या किया था, बल्कि इस पर ध्यान केंद्रित करें कि हमारा वर्तमान नेतृत्व एक बेहतर भारत बनाने के लिए आज क्या कर रहा है।

एक ऐसा भारत, जहां वोट जातिगत और धार्मिक विभाजनों को भड़काकर नहीं, बल्कि शासन से जुड़े वास्तविक मुद्दों पर मांगे जाएं। जहां इतिहास को 'व्हाट्सऐप यूनिवर्सिटी' के पाठ्यक्रम तक सीमित न कर दिया जाए। जहां ध्यान अधिक उपासना-स्थलों के निर्माण पर नहीं, इस पर हो कि कितने गुणवत्तापूर्ण स्कूल और अस्पताल बनाए जा रहे हैं।

एक ऐसा भारत, जहां समुदायों के बीच किसी भी प्रकार के वैमनस्य को केवल शब्दों में ही नहीं, बल्कि ठोस कार्रवाई के माध्यम से भी अस्वीकार किया जाए। जहां कानून का राज हर नागरिक पर समान रूप से लागू हो। जहां नफरत को इस तरह 'सामान्य' न कर दिया जाए कि समुदायों का 'अन्यीकरण' उनके सामाजिक बहिष्कार का कारण बन जाए।

एक ऐसा भारत, जहां पर्यावरण संरक्षण हर सरकार का मंत्र हो। जहां मुख्यमंत्रीगण एक्यूआई के महत्व को समझें और इसके लिए मिलकर काम करें, ताकि नागरिक स्वच्छ हवा में सांस ले सकें। जहां पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों को बेलगाम खनन और रियल एस्टेट माफियाओं द्वारा नष्ट न किया जाए। जहां जलवायु परिवर्तन केवल सेमिनार कक्षों में बहस का विषय न रह जाए, बल्कि जमीनी कार्रवाई में तब्दील हो।

एक ऐसा भारत, जहां वास्तविक आंतरिक पार्टी-लोकतंत्र हो और असहमति को विद्रोह न माना जाए। जहां ईडी को हथियार बनाकर केवल विपक्ष-शासित राज्यों पर न आजमाया जाए। जहां चुनाव आयोग स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने की अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी का निर्वहन करे। जहां एसआईआर पारदर्शी ढंग से हो और जहां धनबल व संस्थागत-ताकत बराबरी के आदर्श को विकृत न कर दे।

एक ऐसा भारत, जो कश्मीर से केरल तक हर देशवासी को अपनाए। जहां दक्षिण बनाम उत्तर, तमिल बनाम हिंदी जैसे विभाजनों को नकारा जाए। जो 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' को नारे से आगे बढ़ाकर वास्तविकता में उतारे।

जहां मनुष्य की गरिमा का महत्व जीडीपी से कम न माना जाए। जहां गरीबों को गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा तक पहुंच मिले और समान अवसर हर सरकार का लक्ष्य बने। जहां यह संभव न हो कि गरीबों के घरों पर बुलडोजर चलाए जाएं, जबकि अमीर और प्रभावशाली लोगों की अवैध बसाहटों का बाल भी बांका न हो।

जहां हर बड़ी परियोजना चुनिंदा कारोबारियों को न सौंप दी जाए, जबकि अनेक मेहनती उद्यमी 'ईज ऑफ डुइंग बिजनेस' की जटिलताओं से जूझते रहें। जहां बड़ी अर्थव्यवस्था बनना तो उत्सव का विषय हो, लेकिन प्रति व्यक्ति नॉमिनल जीडीपी में 130वें पायदान पर होना भी चिंता का कारण बना रहे।

एक ऐसा भारत, जहां छात्र पेपर लीक और परीक्षा में हेरफेर के शिकार न बनें, जहां परीक्षाएं आपराधिक नेटवर्कों के दबाव में आए बिना पूरी सतर्कता और निष्पक्षता के साथ कराई जाएं, जहां कॉलेजों और विशेष पाठ्यक्रमों में प्रवेश की प्रक्रिया योग्यता से संचालित हो, न कि 'सिफारिश' से। जहां कौशल विकास और रोजगार के अवसर साथ-साथ आगे बढ़ें।

एक ऐसा भारत, जहां नेताओं-नौकरशाहों के रूप में ऐसे लोग हों, जिनकी ईमानदारी एक मिसाल बन जाए। जहां जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों की संपत्तियों की निगरानी हो। जहां किसी व्यक्ति का मूल्य उसके ज्ञान से आंका जाए, न कि उसके बैंक बैलेंस से। और हां, एक ऐसा भारत, जहां मीडिया की भूमिका एक सजग पहरेदार की हो।

जहां सत्ता से असुविधाजनक सवाल पूछना हमारा फर्ज हो। जहां किसी रिपोर्टर का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाए कि वह सच्चाई को उजागर करने का कितना साहस रखता है। स्वतंत्रता के उसी स्वर्ग में, मेरा भारत जाग्रत हो। नववर्ष की शुभकामनाएं!

एक ऐसा भारत, जहां नेताओं और नौकरशाहों की ईमानदारी एक मिसाल बन जाए। जहां किसी व्यक्ति का मूल्य उसके ज्ञान से आंका जाए, उसके बैंक-बैलेंस से नहीं। जहां मीडिया की भूमिका एक सजग पहरेदार की हो।

दैनिक जागरण

Date: 02-01-26

आवश्यक है अरावली को बचाना

डॉ. लक्ष्मीकांत शर्मा, (लेखक राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अरावली पर्वतमाला के शोधकर्ता हैं)

हाल में सुप्रीम कोर्ट ने अरावली पर्वतमाला की परिभाषा के संदर्भ में दिए गए अपने ही फैसले पर रोक लगा दी। उस फैसले में सौ मीटर ऊंची पहाड़ियों को ही अरावली मानने को मंजूरी दे दी गई थी। इसके परिणामस्वरूप कई छोटी, लेकिन पारिस्थितिकीय रूप से महत्वपूर्ण भू-आकृतियां संरक्षण की कानूनी सुरक्षा से बाहर आ सकती थीं। इस पर पर्यावरणीय विरोध और कानूनी प्रश्न उठे। सुप्रीम कोर्ट ने अपने पुराने फैसले पर रोक लगाते हुए कहा कि उसे लागू करने से पहले उसकी वैज्ञानिक, पर्यावरणीय और कानूनी समीक्षा आवश्यक है।

अदालत ने विशेषज्ञ समिति के गठन का प्रस्ताव रखा है, ताकि परिभाषा, खनन नियम, संरक्षित क्षेत्र और पारिस्थितिकीय निरंतरता से जुड़े सभी मुद्दों का विस्तृत अध्ययन हो सके। नवीनतम निर्णय इसका संकेत है कि सुप्रीम

कोर्ट स्वयं भी मानता है कि पहले के निर्णय के वैज्ञानिक और पारिस्थितिकीय परिणाम संदेहास्पद हैं। 20 नवंबर, 2025 को सुप्रीम कोर्ट द्वारा अरावली की एकसमान परिभाषा को स्वीकृति देने वाला आदेश एक लंबे समय से प्रशासनिक स्पष्टता के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था। यह आदेश भारत की सबसे प्राचीन पर्वतमाला की कानूनी और पारिस्थितिकीय सुरक्षा को कमजोर कर सकता था, खासकर तब, जब वह पहले से ही अभूतपूर्व दबाव में है।

अरावली करीब दो अरब वर्ष पुरानी भू-वैज्ञानिक प्रणाली है, जो भूजल भरण को नियंत्रित करती है, मरुस्थलीकरण को रोकती है, जलवायु को संतुलित करती है और उत्तर-पश्चिम भारत में लाखों लोगों की आजीविका का सहारा है। इसे केवल ऊंचाई आधारित नियम से परिभाषित करना न केवल वैज्ञानिक रूप से गलत था, बल्कि पारिस्थितिकीय रूप से भी खतरनाक था। जिस समिति की रिपोर्ट पर उक्त आदेश आधारित था, वही समिति स्वीकार करती है कि अरावली परिदृश्य में ढलान और ऊंचाई व्यापक रूप से बदलती रहती है। समिति के अनुसार 34 में से 23 अरावली जिलों में औसत ढलान छह डिग्री से कम है, जबकि 12 जिलों में यह तीन डिग्री से भी कम है। रिपोर्ट यह सही निष्कर्ष निकालती थी कि केवल ढाल और ऊंचाई को मानदंड बनाना विसंगति बढ़ाएगा।

इसके बावजूद अंतिम सिफारिश में 100 मीटर के प्रविधान को मान्यता दे दी गई थी। यह वैज्ञानिक तर्क और प्रशासनिक विवेक के मूल सिद्धांतों के विपरीत था। भारतीय भू-आकृतिक परिस्थितियों में 100 मीटर ऊंचाई का नियम मनमाना था। अरावली जिलों में औसत ऊंचाई कुछ क्षेत्रों में 100-200 मीटर से लेकर केवल एक जिले में 600 मीटर से अधिक है। इतनी विविधता में एकसमान सीमा लागू करना, भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण और सर्वे आफ इंडिया के सिद्धांतों के विपरीत है। इसी प्रकार 500 मीटर 'रेंज कनेक्टिविटी नियम' भी चिंताजनक था। इसके अनुसार दो या अधिक पहाड़ियां यदि 500 मीटर के भीतर हों तो उन्हें एक अरावली रेंज माना जाएगा। इसका कोई भू-वैज्ञानिक आधार नहीं और न ही भारतीय पर्वत प्रणाली मानचित्रण में कोई उदाहरण। सबसे अधिक चिंता का विषय यह था कि समिति ने अरावली क्षेत्रों में महत्वपूर्ण खनिजों के खनन की अनुमति का प्रविधान सुझाया था। यह सबसे नाजुक कोर क्षेत्रों में खनन के लिए कानूनी दरवाजा खोल देता।

अरावली कम नाजुक नहीं, बल्कि अधिक नाजुक है। अरावली राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात में फैली है। इसकी चट्टानें पुरानी और भंगुर हैं। सुप्रीम कोर्ट ने अरावली को बार-बार मरुस्थलीकरण के विरुद्ध एक पारिस्थितिकीय ढाल के रूप में मान्यता दी है। कोई भी परिभाषा जो इस सुरक्षा सीमा को कम करे, वह विज्ञान और न्यायिक परंपरा दोनों के विरुद्ध है। अरावली एक प्राचीन भू-वैज्ञानिक, जल-चक्र और पारिस्थितिकीय प्रणाली है, जो उत्तर-पश्चिम भारत में जलस्रोत, मरुस्थलीकरण नियंत्रण और स्थानीय जीवन को बनाए रखती है। अरावली संकट का समाधान अल्पकालिक प्रशासनिक कदमों से नहीं होगा।

इसके लिए स्थायी, विज्ञान-आधारित समाधान आवश्यक हैं। पर्यावरणविद् एक राष्ट्रीय अरावली विकास प्राधिकरण की स्थापना की वकालत करते रहे हैं। पर्यावरणीय रूप से संवेदनशील क्षेत्रों जैसे रिज टाप, वनाच्छादित पहाड़ियां और वन्यजीव कारिडोर में खनन पर पूर्ण प्रतिबंध होना चाहिए, किसी भी प्रकार की सार्वभौमिक छूट के बिना, क्योंकि एक बार यदि अरावली का खनन हो गया तो उसे कभी पुनर्स्थापित नहीं किया जा सकता। अरावली को स्थायी कानूनी मान्यता मिलनी चाहिए, चाहे पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत पर्यावरणीय रूप से संवेदनशील क्षेत्र के रूप में मिले या फिर भारत की प्राचीन पर्वत विरासत प्रणाली के रूप में एक नई कानूनी श्रेणी बनाकर।

अरावली केवल ऊंचाई से परिभाषित नहीं हो सकती। यह एक भू-वैज्ञानिक, जलवैज्ञानिक और पारिस्थितिकीय प्रणाली है, जो उत्तर-पश्चिम भारत को संभालती है। यदि हम इसकी परिभाषा कमजोर कर देंगे, तो कल इसकी सुरक्षा भी कमजोर हो जाएगी और जब तक हमें इसका नुकसान दिखाई देगा, तब तक बहुत देर हो चुकी होगी। सुप्रीम कोर्ट के ताजा निर्णय ने इस बहस को वैज्ञानिक, भू-वैज्ञानिक और पारिस्थितिकीय संदर्भ में आगे ले जाने का अवसर दिया है और इसे प्रशासनिक उत्तरदायित्व और न्यायिक विवेक के साथ पुनर्मूल्यांकन करने का संकेत दिया है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 01-01-26

पांच साल में कैसे दूर होगा प्रदुषण

लवीश भंडारी, (लेखक सीएसईपी रिसर्च फाउंडेशन के प्रमुख हैं।)

कुछ समस्याएं आसान होती हैं, कुछ जटिल होती हैं और कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें 'विकट समस्याएं' कहा जा सकता है। सबसे आसान समस्याएं वे होती हैं जहां हमें पता होता है कि दिक्कत क्या है | हमें समस्या का हल भी पता होता है और जवाबदेही तय करना भी आसान होता है। सबसे विकट समस्याएं वे होती हैं जहां दिक्कत ठीक से परिभाषित नहीं होती और हल भी परिभाषित नहीं होते। परंतु उत्तर भारत में प्रदूषण की समस्या इन दोनों से अलग है। इस मामले में समस्या को मापना और जवाबदेही तय करना दोनों आसान हैं। लेकिन कई हितधारक यहां एक दूसरे के विरुद्ध काम कर रहे हैं।

यह हमारी खुशकिस्मती है कि राजनीतिक दल प्रदूषण कम करने के लिए खुलकर एकजुट हैं। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने अपने चुनावी वादे में कहा था कि वह 2030 तक दिल्ली में वायु गुणवत्ता सूचकांक यानी एक्यूआई को वर्तमान के आधे स्तर पर ले आएगी। सभी संबंधित लोगों के लिए और भी अच्छी बात यह है कि प्रदूषण के तकनीकी - आर्थिक नीतिगत समाधान अच्छी तरह से ज्ञात हैं। तो फिर समस्या कहां है? केवल इस बात को लेकर श्रम कि प्राथमिकता किसे दी जाए और उसे - कैसे लागू किया जाए।

समस्या को हल करने के दो तरीके हैं: पहला है कारणों का विश्लेषण करना और - नीचे से काम करते हुए हर कारक को पूरी तरह खत्म करना। दूसरा तरीका है तकनीकी हल तलाश करना और यह निर्धारित करना - कि कैसे संस्थान और प्रोत्साहनों को सुसंगत बनाकर तकनीकी समाधानों को लागू किया जा सकता है।.

सामान्य तौर पर देखें तो प्रदूषण की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार अंजाम लेती है। आर्थिक गतिविधियों से कई तरह का उत्सर्जन होता है। उदाहरण के लिए धूल, नाइट्रस या सल्फर यौगिक और विभिन्न कण । ये उत्सर्जन मौसमी हालात मसलन तापमान, आर्द्रता और हवाओं आदि के संपर्क में आते हैं। इसके चलते वे कभी बढ़ते हैं, कभी कम होते हैं तो कभी एक जैसे बने - रहते हैं। कई बार वे हमारे वातावरण से दूर भी हो जाते हैं। सभी शहर और ग्रामीण इलाके प्रदूषण फैलाते हैं। दिल्ली की हालत कई अन्य शहरों से अधिक खराब है क्योंकि यहां का मौसम अलग है। मजाक में कहें तो 'मस्क प्रेरित समाधान' यह होगा कि 500- 700 मीटर की ऊंचाई पर बड़े जेट इंजन लगाए जाएं, जो दिल्ली जैसी शहरों

के ऊपर से प्रदूषण को खींचकर ऊपर फेंक दें ताकि ऊपरी आकाश की हवाएं उसे उड़ा ले जाएं। लेकिन ऐसा संभव नहीं है। हम प्रदूषण को कहीं दूर नहीं फेंक सकते। हमें उसे नियंत्रित करना होगा। अगर हम ऐसा नहीं कर सके तो ठंड के दिनों में उत्तर भारत के आकाश पर बनने वाला गैस चैंबर और अधिक बिगड़ता जाएगा। हम जितनी देर करेंगे दिक्कत उतनी ही बढ़ेगी।

अध्ययन बताते हैं कि दिल्ली की हवा के प्रदूषण में कई अलग-अलग स्रोतों का योगदान है। ये स्थान, समय, दिन, माह और यहां तक कि वर्ष के अनुसार भिन्न होते हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि प्रदूषण से निपटने के लिए हमें प्रत्येक स्रोत को संबोधित करना होगा। इसे चुनौतियों के छोटे-छोटे समूह के रूप में देखा जाना चाहिए और अलग- अलग तरीके से हल किया जाना चाहिए। इसके अलावा, प्रदूषण राज्य की सीमाओं का सम्मान नहीं करता, और किसी क्षेत्र में प्रदूषण का बड़ा हिस्सा उसके आसपास के क्षेत्रों से आता है। ऐसे में हमारा लक्ष्य है शून्य से कम प्रदूषण वाली अर्थव्यवस्था तैयार करना। सबसे पहली बात, जहां तक संभव हो हमें प्रयास करना चाहिए सहकारी हल तलाश करने का जहां समाज, सरकार और उद्योग सभी मिलकर एक साझा लक्ष्य को पाने के लिए काम करें। दूसरा, हल क्षेत्रीय होना चाहिए क्योंकि हरियाणा में प्रदूषण पंजाब की गतिविधियों से प्रभावित होता है। इसलिए समाधान को यथासंभव अधिक से अधिक राज्यों में लागू करना होगा। तीसरा, सरकार को स्पष्ट रूप से एक समयसीमा घोषित करनी होगी। केवल चुनावी वादा पर्याप्त नहीं होगा। पांच वर्ष की अवधि में पूर्ण बदलाव एक अच्छा लक्ष्य होगा और इससे सरकार, नागरिक समाज और उद्योग सभी को एक साझा उद्देश्य के लिए एकजुट करने में मदद मिलेगी। चौथा, हमें इसके लिए अतिरिक्त फंड की आवश्यकता होगी। उसके लिए राज्य सरकारों को जीवाश्म ईंधन पर कर लगाना होगा क्योंकि वह प्रदूषण का बड़ा स्रोत है। प्रदूषण फैलाने वाले अन्य उद्योगों मसलन ईंट भट्ठों पर भी शुल्क लगाना होगा। पांचवीं केंद्र सरकार नई शून्य से लेकर कम प्रदूषण वाली परिसंपत्तियों की पूंजीगत लागत की क्षतिपूर्ति के लिए मूल्यह्रास को अपना सकती है।

वाहनों के एग्जॉस्ट, औद्योगिक चिमनी, निर्माण से उड़ने वाली धूल, सड़क की धूल, बायोमास को जलाना और खराब कचरा प्रबंधन आदि उत्तर भारत के प्रदूषण के लिए अधिक जिम्मेदार हैं। स्पष्ट आदेशों के साथ वित्तीय सहयोग और तकनीकी हस्तक्षेपों का संयोजन, जो निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में फैला हो, इन अधिकांश समस्याओं का समाधान कर सकता है।

वाहन प्रदूषण की बात करें तो दोपहिया- चारपहिया और यहां तक कि बसों के मामले में भी बिजली से चलने वाले तथा हाइब्रिड वाहन एक अच्छा विकल्प हैं। लेकिन कौन बात बड़ी वाहन कंपनियों को पांच वर्षों में पूरे उत्तर भारत में जीवाश्म ईंधन वाहनों

की बिक्री रोकने पर मजबूर करेगी ? आदेशों और त्वरित मूल्यह्रास का मिश्रण इसमें मदद कर सकता है। सड़कों पर अभी भी बड़ी संख्या में पेट्रोल-डीजल वाहन हैं। उन्हें ईवी में बदलने के लिए कर राहत की मदद ली जा सकती है।

निर्माण क्षेत्र की धूल की बात करें तो ऐसे कई स्थानों के ढकने के लिए अब प्लास्टिक या कपड़े का इस्तेमाल शुरू हो गया है। पानी का छिड़काव भी कम लागत वाला अच्छा उपाय है। इतना ही नहीं चूंकि सरकारी परियोजनाएं बड़े पैमाने पर इनका हिस्सा हैं इसलिए सभी निर्माण ठेकों या निजी- सार्वजनिक भागीदारियों में इसे पूर्व शत बना दिया जाना चाहिए।

तीसरी समस्या सड़क की धूल है। इसमें धूल के छोटे-छोटे कण, टायरों से निकलने वाला कार्बन ब्लैक और रबर, तथा वाहनों धुएं से निकलने वाले कण शामिल हैं। यद्यपि कम कार्बन या शून्य- कार्बन वाहनों की ओर बढ़ने से बाद वाले कण कम हो सकते हैं, लेकिन टायर और धूल के कण कभी समाप्त नहीं होंगे। यानी सभी प्रमुख सड़कों और मार्गों की दैनिक धुलाई या वैक्यूमिंग के लिए एक तंत्र की आवश्यकता है। इससे स्थानीय सरकारों की लागत बढ़ेगी, जिसे वे आसानी से संपत्ति कर को तर्कसंगत बनाकर वसूल सकते हैं, कम से कम सभी नई संपत्तियों के लिए। खुले में पड़ा कचरा एक और उदाहरण हैं जहां स्थानीय सरकारों को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी।

चौथा, कई छोटे, मध्यम और बड़े उद्योग बायोमास या जीवाश्म ईंधन जलाते हैं। इनमें ताप विद्युत संयंत्र, ईंट भट्ठे और रासायनिक कारखाने शामिल हैं। इनमें से कई को बिजली - आधारित बनाया जा सकता है। कुल मिलाकर एक बड़ा प्रदूषक अनौपचारिक क्षेत्र है। उदाहरण के लिए, गर्मी और तंदूर के लिए बायोमास जलाना । इन्हें बदलना सबसे कठिन है। हालांकि अर्थव्यवस्था के अन्य सभी हिस्सों की तरह, अनौपचारिक व्यवसाय भी उस वातावरण के अनुरूप होते हैं जिसमें वे काम करते हैं। हमें यह विश्वास करना शुरू करना होगा कि हम इसे ठीक कर सकते हैं।

जनसत्ता

Date: 02-01-26

अरावली के संरक्षण की मुश्किल राह

देवेंद्रराज सुथार

अरावली पर्वत श्रृंखला एक बार फिर राष्ट्रीय बहस के केंद्र में है। इस बार बहस का कारण केवल खनन नहीं, बल्कि वह नई न्यायिक स्थिति है जो सर्वोच्च न्यायालय के एक आदेश के बाद बनी है। न्यायालय ने बीते 20 नवंबर के अपने आदेश पर रोक लगाते हुए यह स्पष्ट किया है कि 21 जनवरी 2026 तक अरावली क्षेत्र में खनन पर प्रतिबंध जारी रहेगा। इसके साथ ही एक नई उच्च स्तरीय विशेषज्ञ समिति गठित करने का निर्देश दिया गया है, जो पहले से नियुक्त समिति की रपट तथा न्यायालय की टिप्पणियों का स्वतंत्र और निष्पक्ष मूल्यांकन करेगी। न्यायालय ने यह भी कहा है कि पिछली सिफारिशें और उन पर आधारित उसकी टिप्पणियां फिलहाल स्थगित रहेंगी और अगली सुनवाई तक लागू नहीं की जाएंगी। पहली नजर में यह निर्णय सावधानी भरा, संतुलित और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में विचारणीय कदम प्रतीत होता है। न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने की कोशिश की है कि कोई भी व्यवस्था लागू होने से पहले उसका वैज्ञानिक, सामाजिक और कानूनी परीक्षण अवश्य हो ।

फिर भी यह सवाल कायम है कि इतनी स्पष्टता के बाद भी अरावली पर विवाद और विरोध क्यों जारी है। इसका उत्तर उस गहरी दूरी में छिपा है जो नीति के इरादों और उसके व्यावहारिक क्रियान्वयन के बीच बनी रहती है। कई लोगों को डर है कि यदि निगरानी और प्रवर्तन कमजोर रहा, तो कोई भी नई व्यवस्था केवल कागजों में सुशोभित होकर रह जाएगी, जबकि जमीन पर पुराने ढर्रे ही चलते रहेंगे।

अरावली कोई साधारण पर्वत श्रृंखला नहीं है। यह भारत की सबसे प्राचीन पर्वतमालाओं में से एक है, जिसकी उम्र लगभग दो अरब वर्ष आंकी जाती है। दिल्ली से गुजरात तक लगभग 650 किलोमीटर में फैली यह श्रृंखला उत्तर भारत के पर्यावरणीय संतुलन की रीढ़ रही है। यह थार रेगिस्तान के पूर्व की ओर फैलाव को रोकने वाली एक प्राकृतिक दीवार की तरह काम करती है और गंगा के मैदानों को मरुस्थलीकरण से बचाती है। इसकी चट्टानें, वनस्पतियां और घाटियां भूजल को संरक्षित करने में मदद करती हैं। चंबल, साबरमती और लूनी जैसी नदियों का उद्गम भी इसी क्षेत्र से होता है। इसके जंगल अनेक वन्य प्रजातियों को आश्रय देते हैं और जलवायु को स्थिर रखने में योगदान करते हैं। इस दृष्टि से अरावली केवल भूगोल नहीं, बल्कि जीवन तंत्र है, जिसकी क्षति का प्रभाव दूरदराज के क्षेत्रों तक महसूस किया जाता है।

अरावली कई दशकों से मानवीय दबाव झेल रही है। पत्थर, रेत और खनिज की बढ़ती मांग ने इसे खनन का प्रमुख केंद्र बना दिया है। पत्थर और चूना पत्थर की निरंतर निकासी ने कई पहाड़ियों को कमजोर कर दिया है। जंगलों का नुकसान हुआ है। आसपास के शहरों में वायु गुणवत्ता लगातार बिगड़ती गई है। भूजल स्तर नीचे गया और ग्रामीण आबादी को पानी के लिए टैंकरों तथा अस्थायी साधनों पर निर्भर होना पड़ा। कई बार नियम बनाए गए, कई बार न्यायालय का सीधा हस्तक्षेप हुआ। मगर इनका पालन हमेशा ठोस रूप में नहीं हो सका।

इसी पृष्ठभूमि में सर्वोच्च न्यायालय ने मई 2024 में नए खनन पट्टों और पुराने पट्टों के नवीनीकरण पर रोक लगाई और एक विशेषज्ञ समिति से विस्तृत रपट मांगी। समिति ने इस बात पर बल दिया कि अब तक खनन परियोजनाओं का मूल्यांकन प्रायः अलग-अलग किया गया, जबकि उनका संयुक्त प्रभाव पूरे क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर पड़ता रहा है। इसलिए समिति ने संचयी पर्यावरणीय प्रभाव के वैज्ञानिक अध्ययन, सटीक नक्शानवीसी, संवेदनशील क्षेत्रों की पहचान, वन्यजीव गलियारों की सुरक्षा और पत्थर क्रशर इकाइयों पर सख्त निगरानी जैसी सिफारिशें कीं। इसी क्रम में अरावली की वैज्ञानिक परिभाषा तय करने का प्रश्न उभरा। अलग-अलग राज्यों तथा संस्थानों द्वारा अरावली की पहचान के लिए भिन्न-भिन्न मानदंड अपनाए जाते रहे हैं। इस असंगति के कारण कई क्षेत्रों में यह विवाद बना रहा कि कौन - सा इलाका वास्तव में अरावली का हिस्सा है। इस भ्रम का लाभ उठा कर खनन को वैध ठहराने की कोशिशें भी होती रहीं। इसे समाप्त करने के लिए बनाई गई संयुक्त समिति ने सुझाव दिया कि जो पहाड़ियां सौ मीटर से अधिक ऊंचाई रखती हैं, उन्हें अरावली की परिधि में माना जाए। न्यायालय ने इस मानक को स्वीकार किया, लेकिन यहीं से व्यापक असहमति और विरोध शुरू हुआ।

पर्यावरण क्षेत्र में काम कर रहे विशेषज्ञों का कहना है कि अरावली जैसी अत्यंत पुरानी और घिस कर बनी पर्वतमाला को केवल ऊंचाई के आधार पर परिभाषित करना उसके वास्तविक महत्त्व को कम करके देखना होगा। इस श्रृंखला की कई पहाड़ियां अपेक्षाकृत नीची अवश्य हैं, परंतु वे वर्षा जल की रोकने, भूजल पुनर्भरण और जैव विविधता बनाए रखने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यदि केवल सौ मीटर की सीमा लागू कर दी जाए, तो बड़ी संख्या में ऐसी पहाड़ियां अरावली की परिभाषा से बाहर हो सकती हैं और उन पर खनन के लिए कानूनी रास्ते खुल सकते हैं। यही वह मुख्य चिंता है जिसे अब न्यायालय ने गंभीरता से लिया है और इसी कारण उसने पूर्व सिफारिशों और टिप्पणियों को अगली सुनवाई तक स्थगित कर दिया है।

सरकार की ओर से यह कहा गया कि आदेशों और प्रक्रियाओं को लेकर भ्रांतियां फैलाई जा रही हैं। जबकि न्यायालय ने साफ किया है कि जब तक नई उच्च स्तरीय समिति स्वतंत्र रूप से पूरी प्रक्रिया की समीक्षा नहीं कर लेती, तब तक न तो सौ मीटर वाली परिभाषा लागू होगी और न ही उससे जुड़े अन्य निर्देश प्रभावी होंगे। इस प्रकार न्यायालय ने संरक्षण

तथा नीति निर्माण दोनों को और अधिक वैज्ञानिक तथा पारदर्शी बनाने का प्रयास किया है। राज्य सरकारों की चिंताएं भी स्वाभाविक हैं। अरावली चार राज्यों में फैली हुई है और हर राज्य की अपनी भूमि नीति, राजस्व संरचना और प्रशासनिक सीमाएं हैं। खनन कई राज्यों के लिए राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत रहा है।

इसी संदर्भ में ' अरावली ग्रीन वाल' परियोजना का उल्लेख भी आवश्यक है। इस योजना में अरावली के आसपास बंजर भूमि को पुनर्जीवित कर हरियाली बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया है। दावा किया गया है कि इससे मरुस्थलीकरण पर रोक लगेगी और स्थानीय पर्यावरण सुदृढ़ होगा। मगर कई स्थानीय समुदायों को आशंका है कि इस योजना से भूमि उपयोग पर नए प्रतिबंध लग सकते हैं और पारंपरिक चराई, खेती और बसावट प्रभावित हो सकती है। इसलिए जो भी हो, स्थानीय समुदायों की सहमति और सक्रिय भागीदारी के साथ किया जाए। अरावली पर प्रश्न यह भी है कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाए?

सर्वोच्च न्यायालय का नवीनतम निर्णय इस दिशा में पुनर्विचार का अवसर है। इससे यह उम्मीद जन्म लेती है कि अरावली की रक्षा पर होने वाली बहस अब अधिक गहराई, वैज्ञानिकता और पारदर्शिता के साथ आगे बढ़ेगी। यदि नई समिति निष्पक्षता से सभी पक्षों की बात सुन कर संतुलित सिफारिशें करती है और सरकारें उन्हें ईमानदारी से लागू करती है, तो आज का विवाद कल के विश्वास में बदल सकता है। यदि प्रक्रिया फिर से केवल कागजों में सीमित रह गई और व्यवहार में वही पुरानी कमजोरियां कायम रहीं, तो अरावली की प्राचीन पहाड़ियां एक बार फिर विकास की कीमत चुकाने को मजबूर होंगी। यही आशंका आज की बहस का मूल कारण है और यही वजह है कि सब कुछ ठीक दिखने के बावजूद असहमति की आवाज थम नहीं रही है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 02-01-26

भारतीय विदेश नीति पर रहेगी नजर

हर्षवर्धन शृंगला, (पूर्व विदेश सचिव व सांसद)

हम नए साल में प्रवेश कर गए हैं। इस समय दुनिया में अनिश्चितता, शक्ति संतुलन में बदलाव और बढ़ती भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति बनी हुई है। साल के पहले दिनही चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के ताइवान संबंधी बयान ने स्पष्ट कर दिया कि यह वर्ष काफी जटिल स्थितियां जनने जा रहा है। जिनपिंगका दो टूक लहजे में यह कहना कि ताइवान का चीन में विलय होकर रहेगा और ताइवानी राष्ट्रपतिका अपनी संप्रभुता से किसी किस्म का समझौता करने से इनकार करना साल 2026 में टकराव की आशंकाओं की एक बानगी भर है। ऐसे माहौल में भारत की विदेश नीति पर सबकी निगाह रहने वाली है।

हालांकि, अपने उद्देश्य की स्पष्टता, रणनीतिक स्वायत्तता और राष्ट्रीय- वैश्विक हितों को साधने वाली साझेदारियों के प्रति हमारी नीति पूरी तरह साफ है। इस साल अमेरिका, रूस, यूरोपीय संघ, जापान, ऑस्ट्रेलिया, आसियान, अफ्रीकी संघ और खाड़ी के देशों से रिश्ते हमारी विदेश नीति के केंद्र में रहेंगे भारत-अमेरिका की रणनीतिक साझेदारी, खासकर रक्षा और महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में स्थिर रहने की उम्मीद है। अमेरिका के साथ व्यापार और टैरिफ पर जारी मतभेदों के बावजूद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के साथ मित्रता और ट्रंप के सबसे करीबी सलाहकारों में सेएक सर्जियो गोरको भारत में अमेरिकी राजदूत नियुक्त किए जाने से दोनों देशों के संबंधों को नई गति मिलने की संभावना है। अमेरिका ने अपनी 'राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति 2025 में भारत के साथ वाणिज्यिक संबंधों और हिंद-प्रशांत रणनीतिक संबंधों को एक साथ विकसित करनेके प्रति भी रुचि जताई है।

रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन इन दिनों रूस से बाहर कम यात्रा करते हैं। इसके बावजूद बीते दिसंबर में उनकी भारत यात्रा हुई। यह अपवाद था। उस यात्रा ने भारत के साथ रूसके संबंधों की अहमियत को एक बार फिर रेखांकित किया। यूरेशियाई आर्थिक संघ के साथ प्रस्तावित व्यापार समझौते के तहत रूस से व्यापारिक रिश्ते को विस्तार देने पर इस साल फोकस रहेगा।

चीन के साथ संबंधों में कुछ विवादों और सीमा- संघर्ष के कारण गतिरोध की स्थिति बनी हुई है। बढ़ते व्यापार घाटे के अलावा दक्षिण एशिया और हिंद महासागर क्षेत्र में उसके बढ़ते कदमों के कारण भी कई चुनौतियां पैदा हुई हैं, फिर भी उसके साथ रिश्ते सामान्य बनाने की दिशा में इस वर्ष नई कोशिशें हो सकती हैं। ब्रिटेन और ओमान के साथ तरजीही व्यापार समझौतों से भारतीय निर्यात, पूंजी निवेश और भारतीय युवाओं के लिए वैश्विक आवागमन के द्वार खुलने के संकेत हैं। इसी तरह, गणतंत्र दिवस पर यूरोपीय नेताओं की भारत यात्रा और यूरोपीय संघ के साथ लंबे समय से प्रतीक्षित आर्थिक समझौते को संपन्न कराने की दिशा में उठाए गएकदमों से यूरोपीय संघ के साथ हमारा जुड़ाव बढ़ेगा। भारतीय विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण कारक 'कनेक्टिविटी' रहा है। इससे आर्थिक एकीकरण और रणनीतिक साझेदारियों में घनिष्ठता आती है। इस साल हमारा ध्यान 'भारत- पश्चिम एशिया यूरोप आर्थिक गलियारे' (आईएमईसी) परकेंद्रित होगा, जो एकीकृत परिवहन, ऊर्जा और डिजिटल नेटवर्क के जरिये इन देशों के साथ हमारे संबंधों को काफी मजबूत कर सकता है। इसके लागू होने से व्यापारिक कुशलता बढ़ेगी, आपूर्ति श्रृंखला मजबूत हो सकेगी और भारत उभरती क्षेत्रीय मुहिम में

अहम भूमिका निभा सकता है। पश्चिम एशिया से शुरू होने वाली 'लुक वेस्ट' नीति सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात (यूएई), ओमान समेत खाड़ी के अन्य देशों व इजरायल के साथ भारत के संबंधों को और मजबूती देगी।

आसियान के साथ भारत का जुड़ाव उसकी 'एक्ट ईस्ट' नीति का मुख्य स्तंभ बना रहेगा, जो हिंद-प्रशांत क्षेत्र में स्थिरता, आर्थिक एकीकरण और समुद्री सुरक्षा के साझा हितों पर आधारित है। सहयोग के क्षेत्र में व्यापार व निवेश, आपूर्ति श्रृंखला की मजबूती, डिजिटल कनेक्टिविटी और क्षमता निर्माण भी शामिल हैं। 'भारत- अफ्रीका फोरम' के आयोजन से अफ्रीकी संघ के साथ भारत की साझेदारी को इस साल नई ऊर्जा मिलेगी। यह दशकों के विकास सहयोग और 'दक्षिण-दक्षिण एकता पर आधारित है। क्षमता निर्माण, विकास, वित्त, स्वास्थ्य, शिक्षा, डिजिटल सार्वजनिक ढांचा और कनेक्टिविटी के मामले में सहयोग के अतिरिक्त शांति व सुरक्षा के साथ बढ़ता व्यापार- निवेश इस साझेदारी का अभिन्न अंग बना रहेगा।

भारत के निकट पड़ोस में घट रही घटनाओं को कम करके नहीं आंका जा सकता, इसलिए भारत 'पड़ोस पहले की अपनी नीति को इस साल भी प्राथमिकता देना जारी रखेगा। हमें नहीं भूलना चाहिए कि पनबिजली परियोजनाओं से लेकर नेपाल में बुनियादी ढांचा निर्माणकी पहल के साथ-साथ श्रीलंका व मालदीव से समुद्री व रक्षा सहयोग ने एक क्षेत्रीय भागीदार के रूप में हमारी स्थिति को मजबूत बनाया है। भारत बांग्लादेश में हो रहे राजनीतिक और संस्थागत बदलाव से तालमेल बिठा रहा है। पूर्व प्रधानमंत्री खालिदा जिया के अंतिम संस्कार में विदेश मंत्री एस जयशंकर का शरीक होना इसका ठोस प्रमाण है। भारत नेपाल के साथ अपने आर्थिक संबंधों को और गहरा कर रहा है, तो भूटान के प्रमुख रणनीतिक भागीदार के रूप में अपनी भूमिका को मजबूती दे रहा है। हिंद महासागर क्षेत्र में आगे बढ़कर कार्रवाई करने के प्रयासों ने भारत की स्थिति एक भरोसेमंद भागीदार के रूप में मजबूत बनाई है।

जाहिर है, वसुधैव कुटुंबकम के सिद्धांत के तहत दुनिया के गरीब देशों में कल्याणकारी कार्यों में योगदान भारतीय विदेशनीति का अहम पहलू है। भारत 'ग्लोबल साउथ की एक प्रमुख आवाज के रूप में उभरा है। भारत इस क्षेत्र की विकास प्राथमिकताओं, न्यायसंगत विकास और वैश्विक संस्थानों में विकासशील देशों को अधिक प्रतिनिधित्व देने की वकालत करता है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी रूस और यूक्रेन के नेताओं के साथ सीधे संपर्क में हैं। उन्होंने जी-20 और संयुक्त राष्ट्र जैसे बड़े वैश्विक मंचों पर भीड़ससंघर्ष को समाप्त कराने में संवाद का समर्थन किया है। इस तरह से वह कूटनीतिक तौर पर सभी पक्षों से जुड़े हैं। ये तमाम कवायदें भारत के इस विश्वास को पुष्ट करती हैं कि संवाद और कूटनीति के माध्यम से ही शांति संभव है। साल 2026 में हमारा कदम सतर्क, संतुलित और आशावादी रहेगा। इस तरह, बहुध्रुवीय दुनिया में हमारी विदेश नीति के केंद्र में रणनीतिक स्वायत्तता, राष्ट्रीय सुरक्षा और विकास ही रहेगा।

Date: 02-01-26

रोजगार गारंटी को मजबूत बनाए रखने की जरूरी

हिमांशु, (एसोशिएट प्रोफेसर, जेएनयू)

सरकार ने दो दशक पुराने 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम' (मनरेगा) का नाम और उद्देश्यों को बदलकर उसकी जगह 'विकसित भारत- गारंटी फॉर रोजगार और आजीविका मिशन (ग्रामीण) ' या बीबी जीराम जी कानून लागू किया है।

सार्वजनिक रोजगार योजनाएं लंबे समय से देश में आजीविका सुरक्षा और गरीबी उन्मूलन के लिए लागू की जाती रही हैं। महाराष्ट्र में 1970 के दशक से ऐसी ही योजनाप्रभावी है। हालांकि, मनरेगा में अलग बात यह थी कि इसमें हरेक ग्रामीण परिवार को मांग आधारित और बिनाशर्त रोजगार की गारंटी दी गई थी। बेशक, इसमें रोजगार की पूर्ण गारंटी नहीं थी, क्योंकि इसमें एक परिवार को अधिकतम 100 दिनों का ही रोजगार मुहैया कराने का प्रावधान था, लेकिन इसने ग्रामीण बुनियादी ढांचों में सुधार, कृषि उत्पादकता बढ़ाने और गरीबी कम करनेमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसकी उपयोगिता तव विशेष रूप से साबित हुई, जब कोरोना महामारी के दौरान गांव लौटे लाखों प्रवासियों के लिए भी यह कानून जीवनदायक बना।

मनरेगा की खासियत यह भी थी कि इसे कानूनी समर्थन हासिल था। इसकी बिना शर्त सबके लिए उपलब्धता नेइसे अनेक परिवारों की जीवन रेखा बना दिया। जब पश्चिम बंगाल सरकार ने इसको रोकने की कोशिश की, तब सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि मनरेगा को महज तकनीकी कारणों से नहीं रोका जा सकता। मजदूरों के लिए मनरेगा से इतर कहीं और काम करने का मतलब था, मनरेगा में तय मजदूरी से अधिक मिलना। इस तरह इस कानून ने श्रम बाजार को परोक्ष रूप से मजबूत किया। इस बात के पर्याप्त सुबूत है कि इसने 2004-05 से 2011-12 तक ग्रामीण मजदूरी बढ़ाने और गरीबी कम करने में मदद की। बाद के वर्षों में इसके कई प्रावधानों को केंद्र एवं राज्य सरकारों नेकमनोरकिया औरइसकी मजदूरी, जोबाजार दर से अधिक थी, वह उसकी दो-तिहाई रह गई। फिर भी इसमें काम की मांग बनी हुई थी, जिसका फायद अमूमन औरतें और वचित समुदायों के लोग उठा रहे थे।

नए कानून में मनरेगा वाले अधिकार का अभाव है और अधिकतम सीमा से अधिक काम की मांग नहीं की जा सकती। इसके तहत अब केंद्र सरकार अपने तय 'उद्देश्यों' के तहत फंडिंग करेगी। कृषि सीजन में इस कानून के तहत काम मांगने की गांरटी 60 दिनों के लिए टाल दी गई है। बेशक, इस दौरान अधिकतर मजदूर मनरेगा का काम नहीं ढूंढ़ते थे, पर गारंटी के कारण उन्हें बेहतर मजदूरी के लिए मोलभाव करने में मदद मिलती थी। मनरेगा ने निस्संदेह मजदूरी बढ़ाने में मदद की, लेकिन इससे भी अहम बात यह है कि इसने सूखा या खेती के काम की कमी के दौरान रोजगार उपलब्ध कराकर मजदूरों को सहारा दिया। हालांकि, हाल के दिनों में 22 राज्यों में इसकी मजदूरी दर बाजार दर से कम हो गई थी, जिसकारण इसमें काम की मांग घट गई थी। मगर ऐसे समय में, जब खेती की मजदूरी स्थिर है और गैर- खेती की मजदूरी में करीब एक दशक से कमी आ रही है, तब फसल सीजन के दौरान इसे लागू करने पर रोक लगाने से मजदूरी पर और दबाव पड़ सकता है। इसके अलावा काम के अधिकतम दिनों को 125 करने का भी कोई खास फायदा नहीं मिल सकता, क्योंकि पिछले दो दशकों में मनरेगा में काम के दिनों की औसत संख्या प्रति परिवार 50 से कम रही है और मुश्किल से दो से तीन प्रतिशत परिवार ही 100 दिनों तक काम कर पाए हैं।

नए कानून को आर्थिक मोर्चे पर भी जूझना पड़ सकता है। मनरेगा में 90 प्रतिशत राशि केंद्र सरकार देती थी, लेकिन अब वह बड़े राज्यों को खर्च का सिर्फ 60 प्रतिशत हिस्सा देगी। इस तरह, नया कानून कमजोर अर्थव्यवस्था वाले राज्यों के लिए बोझ बन सकता है। इससे राज्यों के बीच असमानता बढ़ सकती है, जिससे कम उत्पादकता और प्रति व्यक्ति आय वाले राज्यों को नुकसान हो सकता है। मनरेगा ज्यादातर गरीबों के लिए एकमात्र सामाजिक सुरक्षा की गारंटी थी, जिससे

लगभग एक-तिहाई ग्रामीण परिवार लाभ उठा रहे थे। जाहिर है, इसके खत्म होने से ग्रामीण संकट बढ़ सकता है और धीरे-धीरे पटरी पर लौट रही ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी सुस्त पड़ सकती है।